

## पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा: एक विश्लेषण

डॉ. बीना माथुर, ऐसोसिएट प्रॉफेसर ( इतिहास )

ए. के. पी (पी.जी.) कॉलेजखुर्जा ,बुलंदशहर ,उ.प्र.

21 वीं शताब्दी के इस युग में जहां मनुष्य के जीवन को अधिक सुखमय बनाने के लिए नित्य नए वैज्ञानिक आविष्कार किये जा रहे हैं। मनुष्य के भौतिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए प्रकृति द्वारा स्थापित सभी मानकों को तिलांजली दी जा रही है। इसके परिणाम घातक सिद्ध हो रहे हैं। आज समाज नैतिक और सांस्कृतिक रूप से विनाश की दिशा में बढ़ रहा है। मानव मूल्यों के प्रति उपेक्षा समाज का सबसे बड़ा संकट बना हुआ है। मूल्य का सीधा तात्पर्य किसी वस्तु की कीमत से होता है। कीमत के आधार पर वस्तु की गुणवत्ता का आंकलन किया जाता है। मनीषियों ने मनुष्य जीवन को सफल, सुनियोजित, सामंजस्यपूर्ण और सुव्यवस्थित करने हेतु पुरुषार्थ के रूप में मूल्यों की योजना की है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से पुरुषार्थ दो शब्दों से मिलकर बना है 'पुरुष' और 'अर्थ'। वेद पृथ्वी पर मानव को दिया वह अमूल्य वरदान है जिसमें ज्ञान - विज्ञान की समस्त सम्पदा निहित है। "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" और "सर्वज्ञानमयो हि वेदः" कहकर मनु ने वेद की महत्ता प्रदर्शित की है। वेदों को साक्षात् ब्रह्मा की वाणी कहा गया है, जो मानव जीवन के नैतिक नियमों व मूल्यों का उत्प्रेरक है। वैदिक उदात्त भावनाएँ, आचरण, सम्बन्धी नियम, जीवो पर दया वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा विश्वशान्ति मानवीय कल्याणकारी भावनाएँ, सत्य आशावाद आदि अनेकों परिकल्पनाएँ वेदों में हैं जो मानव को एक उच्च जीवन जीने की ओर प्रेरित करती हैं। भारतीय समाज में प्रारंभिक काल से ही "पुरुषार्थों" को स्थापित किया गया है। यह संख्या में चार हैं, -धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसी लिए इसे पुरुषार्थ चतुष्टय भी कहा गया है। धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थ चतुष्टय में त्रिवर्ग के नाम से जाने जाते हैं। यह तीनों पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय को चतुराश्रम व्यवस्था के साथ दृढ़तापूर्वक स्थापित किया गया है।

आश्रम जीवन की वह स्थिति है जिसमें कर्तव्य पालन के लिए पूर्ण परिश्रम किया जाये। वैदिक साहित्य में आश्रम शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, परन्तु वेदों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि आश्रम किसी व्यवस्था के रूप में नहीं था, किन्तु व्यवहार में उसका उद्भव अवश्य हो चुका था। वैदिक साहित्य में ब्रह्मचारी, गृहपति और वै खानस (वानप्रस्थ) उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। कई स्थानों पर यति और मुनि शब्द का प्रयोग भी मिलता है। जिसका प्रयोग अनाथों के लिए किया गया प्रतीत होता है। अथर्ववेद में भी इन्द्र द्वारा यतियों के वध का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आर्य लोग मृत्यु के पश्चात जीवन में विश्वास रखते थे। सन्यास से उन्हें कोई विशेष लगाव नहीं था। फिर भी इस श्रमण विचारधारा की उत्पत्ति हो चुकी थी। संभवतः यति इसी विचारधारा के पोषक थे। इस श्रमण विचारधारा ने आगे चलकर सन्यास आश्रम का रूप धारण कर लिया। यदि ऋग्वेद में सन्यास आश्रम का वर्णन नहीं मिलता, परन्तु कई स्थानों पर मुनियों का वर्णन मिलता है जिन्हें 'वातरशना' कहा गया है मुनयो वातरशना पिशंगा वसतेऽमला।

बोधद और जैन परम्पराओं में आश्रम का कोई विरोध तो नहीं दिखाइ देता है, किन्तु यह दोनों धर्म प्रथम दो आश्रमों ब्रह्मचर्य और गृहस्थ की अनिवार्यता को स्वीकार नहीं किया करते हैं। यति और मुनि को इन दोनों धर्मों ने बहुत प्रोत्साहन दिया है। समाज में भिक्षुओं की वृद्धि ने समाज को दुर्बल बनाने का कार्य किया है। इस श्रमण विचारधारा ने छठी शताब्दी ई.पू में उत्पन्न होने वाले नवीन धर्मों, जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म के सिद्धांतों पर प्रभाव डाला और उससे परिव्राजक प्रतिष्ठा स्थापित की। आपस्तंब धर्मसूत्र के अनुसार गृहस्थ, आचार्यकुल (ब्रह्मचर्य), मौन, तथा वानप्रस्थ चार आश्रम बताये गये हैं।<sup>4</sup> उपनिषद् काल में आश्रम व्यवस्था की स्थापना हो चुकी थी। छन्दोग्य उपनिषद् में चार आश्रमों का वर्णन मिलता है। आचार्य, कुलवासी, ब्रह्मचर्य की ओर, यज्ञ अध्ययन और दान गृहस्थ की ओर, तप वानप्रस्थ की ओर तथा ब्रह्म संस्था सन्यास आश्रम की ओर संकेत करते हैं। गौतम, वशिष्ठ, बौधायन धर्मसूत्रों तथा महाकाव्यों में आश्रमों की संख्या चार बताई गई है।<sup>5</sup> गौतम धर्मसूत्र के अध्याय 1-2 ब्रह्मचारी, भिक्षु, और वैखानस आश्रमों की विधि बताई गई है।<sup>6</sup> महाभारत के अनुसार मनुष्य के संपूर्ण जीवन को सौ वर्ष का मानते हुए चार समान भागों में विभाजित किया गया है। महाभारत में कहा गया है आयु षस्तुचतुर्भागम् ब्रह्मचारी.....चतुर्थे चायुषो गते।<sup>7</sup> वशिष्ठ एवं याज्ञवल्क्यकी व्यवस्था के अनुसार मनुष्य ब्रह्मचर्य के पश्चात् भी परिव्राजक धर्म ग्रहण कर सकता है।<sup>8</sup> बौधायन धर्मसूत्र के अनुसार सन्यासाश्रम 75 वर्ष की अपेक्षा 70 वर्ष की आयु से प्रारंभ होता है। अर्थात् अपने युग के अनुरूप व्यवस्थाकारों ने आश्रमों में प्रवेश का काल और समाप्ति काल अपनाया है। उनका एक सा कालचक्र नहीं है। उपनिषदों में अनेक स्थानों पर आश्रम व्यवस्था के उल्लेख मिलते हैं। छन्दोग्य उपनिषद्<sup>9</sup> ब्रह्दारण्यकोपनिषद्<sup>10</sup> मुण्डकोपनिषद्<sup>11</sup>, जावालोपनिषद्<sup>12</sup>, श्वेताश्वरोपनिषद्<sup>13</sup>, आदि में विभिन्न आश्रमों का नाम, धर्म व्यवस्थाओं का वर्णन मिलता है। मानव आयु 100 वर्षों की मान कर उसको चार बराबर भागों में बांट दिया इसमें प्रथम, ब्रह्मचर्य, द्वितीय गृहस्थ, तृतीय वानप्रस्थ, चौथा सन्यास आश्रम था। इन चारों आश्रमों के साथ कर्म के रूप में पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष को स्थापित किया गया। प्रथम पुरुषार्थ धर्म है। ईश्वर में विश्वास, नैतिकता, चरित्र की पवित्रता, न्याय की धारणा, कर्तव्यनिष्ठता, आदि इस पुरुषार्थ के प्रमुख भाग हैं। धर्म को ब्रह्मचर्य आश्रम के साथ स्थापित किया गया है। अर्थ चतुष्टय पुरुषार्थ में दूसरे स्थान पर आता है। इसे गृहस्थाश्रम के साथ जोड़ दिया। अर्थ का तात्पर्य धन से लिया जाता है। हिंदू धर्म व्यक्ति के संपूर्ण सुख और कल्याण के लिए भौतिक संपदा के महत्व को मान्यता देता है। व्यवस्थाकारों ने नई संतति की उत्पत्ति के उद्देश्य से जिससे कि यह संसार सदा गतिमान रहे भारतीय दर्शन में पुरुषार्थ चतुष्टय में काम को तृतीय स्थान दिया है। मोक्ष का सीधा सा तात्पर्य अपने समस्त जीवन के सुखों को भोगकर समस्त कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए मनुष्य जीवन मरण के बंधनों से मुक्त हो जाए। सन्यासाश्रम का प्रमुख लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना ही है।

वर्तमान में हमारी अतिवादी वृत्ति ने हमें भौतिक रूप से सुविधा संपन्न अवश्य बनाया है किन्तु नैतिक रूप से हमें मूल्यविहीन कर दिया है। नैतिक रूप से दिवालिया आज का मानव स्वयं को आधुनिक कहता है। पुरुषार्थों का पारंपरिक अर्थ आज कमजोर कर दिया गया है। पुरुषार्थों के अभाव में आधुनिक जीवन की मात्र तकनीकी उपलब्धि हमें किस दिशा में ले जायेगी आज इस

पर पुनः मंथन की आवश्यकता है। जीवन में लक्ष्य का निर्धारण कर उन्हें प्राप्त करने का प्रयास करना ही पुरुषार्थ है। मानव जीवन को 100 वर्ष का मान कर उसे चार आश्रमों में विभक्त किया गया- ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यासाश्रम। ब्रह्मचर्याश्रम का प्रमुख लक्ष्य ज्ञानार्जन करना तथा नैतिक मूल्यों का अनुपालन करते हुए सचरित्र का निर्माण करना था। नैतिक मूल्यों के कारण ही मनुष्य अपनी समस्त इंद्रियों पर नियंत्रण रख सकता है। वर्तमान में मनुष्य का अपनी इंद्रियों पर नियंत्रण नहीं रहा है इस कारण ही आज समाज में असंतोष व्याप्त है। एक पूर्ण और सुखी जीवन के लिए पुरुषार्थ आवश्यक और पर्याप्त है।

1- धर्म-धर्म क्या है ? धर्म का शाब्दिक अर्थ है धारण करना। यह एक मनुष्य को कर्तव्यों का बोध कराता है, सत्य के मार्ग पर ले जाता है और यहां मनुष्य को विवेकशील बनाता है। धर्म के अभाव में मनुष्य पशुतुल्य होता है। धर्म मनुष्य को उसके अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराता है। यह नैतिक कार्यों का दर्पण है। भगवद्गीता के अनुसार सम्पूर्ण भूतों के कल्याण के लिए ही धर्म की स्थापना हुई है। मनु ने धर्म के दस लक्षण बताए हैं - धैर्य, क्षमा, दम (मन पर नियंत्रण), अस्तेय, शौच, इंद्रियसंयम, ज्ञान, विद्या, सत्य, क्रोध का परित्याग। मनु के अनुसार जो व्यक्ति धर्म का सम्मान करता है धर्म उस व्यक्ति की सदैव रक्षा करता है। अतः धर्म व्यक्तिपूरक और समाजपूरक दोनों है। धर्म, व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण, विकास और आत्मसाक्षात्कार करता है। यह उन पुरुषार्थों की जन्मभूमि है। अन्य पुरुषार्थ धर्म का संरक्षण प्राप्त करते हैं। भारतीय दर्शन में धर्म प्राथमिक रूप से एक नैतिक अवधारणा है, अतः इसे पुरुषार्थ चतुष्टय में प्रथम स्थान दिया गया है। गौतम, बौधायन, वशिष्ठ, मनु आदि लगभग सभी धर्मकारों ने धर्म को पुरुषार्थ चतुष्टय में प्रथम स्थान पर रखा है।<sup>14</sup> अतः धर्म मानवीय स्वभाव को नियमित एवं नियंत्रित करने वाला एक सृजनात्मक आधार है। इसकी व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'धारण करना'। "धर्मः ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः, धरति धारयति व लोकम् इति धर्मः, ध्रियते यः सधर्मः"। चाणक्य ने लिखा है कि - 'धर्मण धार्यते लोकः' धर्म से विपरीत फल देने वाला अधर्म है। अर्थात् मानव जीवन का सर्वश्रेष्ठ तत्व धर्म है। लगभग सभी व्यवस्थाकारों ने प्रथम पुरुषार्थ धर्म को ब्रह्मचर्याश्रम के साथ व्यवस्थित किया है। अतः ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ ब्रह्म अथवा वेद के मार्ग पर चलना। ब्रह्मचारी का पुरुषार्थ है- अनुशासित, ऋद्धभाषी, संयमित, जितेंद्रिय धैर्यशील, होना चाहिये। जो सतर्क रहे और स्वाध्याय में तत्पर हो। काणे के अनुसार भी "ऋग्वेद में धर्म निश्चित नियम के रूप में है जो कि आचरण का नियम है। उपनयन संस्कार के साथ ही ब्रह्मचर्याश्रम का प्रारंभ होता था। संस्कार प्रकाशक के अनुसार " उपसमीपे आचार्यादीनां बटोनयनं प्रायणमुपनयनम् समीपे आचार्यादीनां नीयते बटुर्येन तदुपन्यमिति वा।<sup>15</sup> अतः उपनयन का अर्थ है, वह संस्कार जिसके द्वारा शिष्य को आचार्य के समीप लाया जाए। बालकों और बालिकाओं को उपनयन संस्कार के बाद आचार्यकुल में निवास करना होता था।<sup>16</sup> और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्या ग्रहण करनी होती थी। मनुस्मृति में कहा गया है कि उपनयन संस्कार के बाद एक बालक ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करता है और उसका प्रमुख पुरुषार्थ धर्म का अनुपालन करना है।<sup>17</sup> अथर्ववेद कन्याओं की शिक्षा को विशेष महत्व देता है।<sup>18</sup> माता-पिता अपनी कन्या को पति के घर जाते समय बुद्धिमत्ता और विद्याबल का उपहार दें। मनुस्मृति में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जातियों को उपनयन संस्कार का अधिकार था जबकि शूद्रों को केवल गृहस्थाश्रम का ही अधिकार

था।<sup>19</sup> किन्तु मनुस्मृति में यह भी कहा गया है कि 'जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते' अर्थात् जन्म से तो सभी व्यक्ति शूद्र के रूप में उत्पन्न होते हैं बाद में कर्मों के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बनते हैं।<sup>20</sup> अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से धर्म का पालन करते हुए अपने कर्मों से अपने जीवन को मोक्ष के मार्ग पर ले जा सकता है। गोभिल गृहसूत्र के अनुसार महिलाओं को भी पुरुषों की भांति यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार था। महिलाएं ब्रह्मचारिणी के रूप में वेदों का अध्ययन करती थीं।<sup>21</sup> परन्तु स्मृति काल तक आते-आते उपनयन संस्कार तथा वेदों के अध्ययन का अधिकार महिलाओं के हाथों से जाता रहा। महाभारत के शान्तिपर्व में भिक्षार्जन करना ब्रह्मचारी का प्रमुख पुरुषार्थ बताया गया है। जो गुरु की आज्ञा से ही किया जा सकता था। गुरुकुल के ब्रह्मचारी का जीवन अत्यधिक व्यवस्थित, संयमित तथा नियमबद्ध होता था। सदाचार का पालन करते हुए सचरित्र का निर्माण करना उसके जीवन का मुख्य लक्ष्य होता था। ब्रह्मचार्याश्रम में किसी भी स्त्री के साथ शारीरिक संबंध कायम करने वाले ब्रह्मचारी को 'अवकीर्णी' कहकर अपमानित किया जाता था।<sup>22</sup> महाभारत में ब्रह्मचर्य के तीन वर्गों उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ का वर्णन मिलता है। साथ ही ब्रह्मचर्य की दो श्रेणियों का वर्णन है। प्रथम 'उपकुर्वाण' अर्थात् वे ब्रह्मचारी जो ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना चाहते थे। द्वितीय 'नैष्ठिक' अर्थात् वे ब्रह्मचारी जो आजीवन ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते थे। धर्म का पालन करते हुए मोक्ष को प्राप्त करना ही उनके जीवन का उद्देश्य था। आत्मानं निष्ठां उत्क्रान्तिकालं नयतीति नैष्ठिकः।" ब्रह्मचारी का मुख्य लक्ष्य सचरित्र के निर्माण के साथ राष्ट्र का विकास करना भी था। इस लिए गुरुकुल में उन्हें कठोर जीवन व्यतीत करना पड़ता था। समावर्तन संस्कार के साथ ब्रह्मचारी गृहस्थ में प्रवेश करता था। यहाँ उसे अपने पुरुषार्थ अर्थ और काम का निर्वाह करना पड़ता था। उपनिषदों में भी गुरुकुल से समावर्तन करने वाले ब्रह्मचारियों का वर्णन किया गया है। महाभारत के उद्योग पर्व में कहा गया है कि कई ब्रह्मचारी अर्थ और काम का परित्याग करके सीधे मोक्ष प्राप्ति के लिए सन्यासाश्रम में प्रविष्ट होते थे।<sup>23</sup> युधिष्ठिर ने धर्म की परिभाषा उस सामर्थ्य के रूप में की है जो कि सत्य को असत्य से अलग करती है तथा सत्य के मार्ग पर चलती है।" गीता में गुण पर आधारित धर्म का स्वरूप विकसित हुआ। स्वधर्म निष्काम कर्म की विचारधारा, गीता के धर्म की विशेषता थी। 'मनु धर्म को अपने व दूसरों के प्रति कर्तव्य पक्ष के अर्थ में लेते हैं।

## 2. अर्थ

पुरुषार्थों में अर्थ का दूसरा स्थान है। शरीर को अर्थ को उसी प्रकार आवश्यकता होती है जिस प्रकार आत्मा के लिए मोक्ष, बुद्धि के लिए धर्म तथा मन के लिए काम की आवश्यकता होती है। चाणक्य ने अर्थ को सांसारिक जीवन का मूल कहा है। जिसके जीवन में अर्थ नहीं होता वह अपने किसी भी कर्तव्य का समुचित पालन नहीं कर सकता है। महाभारत में अर्थ को उच्चतम धर्म कहा गया है। जिसके अभाव में स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती है। महाभारत के उद्योग पर्व में कहा गया है कि अर्थ का संचय धार्मिक आधार पर ही होना चाहिए। अनैतिक और अधार्मिक साधनों से संचित धन पापकर्मों को जन्म देता है। जिसके पास धन नहीं है वह मनुष्य मृतक समान होता है। धर्म विरुद्ध अर्थ पाप का कारण होता है। धर्मशास्त्रों में अर्थ पुरुषार्थ के संबंध में 'पुरुषस्य अर्थ' के रूप में पुरुष के स्वरूप निर्धारण के आधार पर अर्थ की व्यवस्था की गई है। अर्थ, मनुष्य के जीवन के लिए अत्यावश्यक है। पुरुषार्थ से मनुष्य के इस लोक और परलोक के समस्त प्रयोजनों की प्राप्ति होती है। यतः सर्वप्रयोजन - सिद्धिः स अर्थः। महर्षि

चाणक्य के अनुसार- 'अर्थार्थ प्रवर्तने लोक ।' अर्थ का मतलब है अभिलाषित वस्तु । अतः अर्थ को सभी प्राप्त करना चाहते हैं । इसलिए उसका 'अर्थ' नाम भी सार्थक है अर्थ्यते सर्वैः इति अर्थः । अर्थात् जिसको प्राप्त करने की अभिलाषा सब करते हैं उसको अर्थ कहते हैं। धर्म ही समस्त सुख-समृद्धि का मूल है। मनु के अनुसार अर्थ और काम पुरुषार्थ के अनुपालन के लिए ही वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत गृहस्थाश्रम की व्यवस्था की गई है । मनु लिखता है यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः । तथा ग्रहस्थं आश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ।<sup>24</sup> इसकी पुष्टि बौधायन धर्मसूत्र भी करता है। आपस्तम्ब ने चारों आश्रमों का वर्ण करते समय सर्वप्रथम गृहस्थ आश्रम का ही वर्णन किया है।<sup>25</sup> एक ब्रह्मचारी अपने गुरु के आशीर्वाद के साथ, समावर्तन संस्कार के माध्यम से, मन्त्रोच्चारण के मध्य से विवाह द्वारा गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था। गुरु के बिना गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाले ब्रह्मचारी 'खटवारूढ' कहलाते थे। गृहस्थाश्रम में एक मनुष्य अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनीतिक सभी कर्तव्यों का निर्वाह करता है। लगभग सभी हिन्दू धर्मग्रन्थों में जन्म से लेकर मृत्यु तक सोलह संस्कारों का वर्णन मिलता है। यह संस्कार निम्न प्रकार हैं- गर्भाधारण, पुंसवन, सीमान्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, कर्णछेदन, विधारम्भ, उपनयन, केशान्त, सावित्री, समावर्तन, विवाह, अन्त्योष्टि ये सभी संस्कार गृहस्थ आश्रम में ही संपन्न होते थे। जिनके माध्यम से मनुष्य अपना जीवन शुद्ध एवं सुसंस्कृत बनाता था। गृहस्थ आश्रम में ही मनुष्य अपने देव, ऋषि एवं पित्र तीन ऋणों से मुक्ति प्राप्त करता था। साथ ही धर्म, अर्थ, काम तीन पुरुषार्थों का निर्वाह भी इसी आश्रम में करता था। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पित्रयज्ञ, नृत्यज्ञ, भूतयज्ञ इन पाँच महायज्ञों का पालन भी मनुष्य को इसी आश्रम में करना होता था।<sup>26</sup> पंच महायज्ञों का वर्णन महाभारत और रामायण महाकाव्यों में मिलता है। तैत्तिरीय आरण्यक में इन यज्ञों के नाम और उनकी सरल परिभाषाओं का वर्णन किया गया है । प्रथम देवयज्ञ है इसमें अग्नि में समिधा दान होता है। द्वितीय पित्रयज्ञ है जिसमें पित्रों को स्वधा (श्राद्ध) दी जाती है। तृतीय भूतयज्ञ है इसमें प्राणिमात्र के लिए बलि दी जाती है। चतुर्थ द्रव्ययज्ञ है इसमें ब्राह्मणों को अन्न दान किया जाता है। इसे मनुष्ययज्ञ भी कहते हैं। इसमें स्वाध्याय होता है, मनुष्य इस अवसर पर वेद मंत्रों का पाठ करता था। और अपने बौद्धिक स्तर को विकसित करने का प्रयास करता था। इन पंच महायज्ञों का मुख्य उद्देश्य देवों, ब्राह्मणों और अतिथियों के ऋण से उऋण होना था। मनुष्य अपने जीवन में कई बार हिंसक और पाप कर्म भी करता है उसके प्रायश्चित हेतु इन पंचमहायज्ञों की कल्पना की गई है। उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि सोलह संस्कार, चार पुरुषार्थ, पांच महायज्ञ, गृहस्थाश्रम का प्राण है। अर्थ के अभाव में यह आश्रम प्राणहीन प्रतीत होता है। यही तत्त्व गृहस्थ आश्रम को चारों आश्रमों में सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। काम-तीसरा पुरुषार्थ काम जिसे भारतीय धर्म दर्शन में सन्तानोत्पत्ति व वंशवृद्धि का प्रमुख लक्ष्य माना गया है। काम ही सारे संसार का बीज है। ऋग्वेद में कहा गया है- "कामस्तदग्रे - समवर्तताधिमनसो रेतः प्रथम यदासीत् । सतो बन्धुमसति निरभिन्दन् हृदा प्रतीच्या कवयोमनीषा।।" काम का प्रमुख उद्देश्य पति पत्नी में आपसी-, सहयोग, प्रेम और परोपकार के भाव को उत्पन्न करना है। यह जीवन का प्रमुख अंग है परन्तु इसका अतिरेक भयंकर दुर्गुण है। महाभारत में कहा गया है कि धर्म अर्थ की प्राप्ति का कारण है और काम अर्थ का फल है। जो व्यक्ति धर्म रहित काम का अनुसरण करता है वह अपनी बुद्धि को समाप्त कर देता है । इन्द्रियाँ जिसके वश में होती हैं, उसकी बुद्धि स्थिर होती है। काम के वशिभूत होकर व्यक्ति में



विवेक की कमी और क्रोध की अधिकता हो जाती है जिसमें उसकी बुद्धि का विनाश होता है। भरतीय मनीषियों ने धर्म से नियन्त्रित काम की अनुशंसा की है। इसी से परिवार और समाज गतिशील रह सकता है। अन्यथा मनुष्य पशु के स्तर आ जाएगा और समाज से नैतिकता, शुद्धता और चरित्र समाप्त हो जाएंगे। काम एक सार्वभौम भावना व नैसर्गिक प्रवृत्ति है। काम एकाकी न होकर धर्म व अर्थ द्वारा अभिव्यक्त होता है व परम पूर्णता तक ले जाता है। काम शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है - एक अर्थ नितान्त संकुचित है तो दूसरा व्यापक संदर्भ से जुड़ा है। संकुचित अर्थ में काम से तात्पर्य मात्र वासना, इन्द्रिय सुख एवं यौन प्रवृत्तियों की संतुष्टि से होता है। व्यापक संदर्भ में काम के अन्तर्गत समस्त मानवीय प्रवृत्तियों, इच्छाओं तथा कामनाओं को समाविष्ट मानते हैं। वात्सायन के अनुसार भी वही प्रवृत्ति काम पुरुषार्थ के अन्तर्गत आ सकती है जो धर्मानुकूल हो। भगवद्गीता में कहा गया है जो मनुष्य धर्मपूर्ण काम का सेवन करता है उसमें ईश्वर विद्यमान रहता है। अतः स्पष्ट होता है कि मान जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए पुरुषार्थ व्यक्तिगत, भौतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन के बीच सम्यक समन्वय स्थापित करता है। यह मानव व्यक्तित्व एवं समाज को निर्माण का आधार है। मनुस्मृति के अनुसार ही धर्म, अर्थ एवं मोक्ष पुरुषार्थ का आधार भी काम है। मोक्ष-मनु के अनुसार चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष उसी मनुष्य को प्राप्त होता है जिसका अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण हो, जो अहिंसक हो तथा राग द्वेष को जिसने त्याग दिया हो। विशुद्ध चरित्रवान व्यक्ति को ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि मानव इन्द्रियाँ मन को भ्रमित करती हैं। मोक्षा प्राप्ति के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति को लोभ, मोह, काम, क्रोध और दम्भ को पूर्णतया त्याग देना चाहिए। मोक्ष से धर्म का प्रत्यक्ष संबन्ध है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहा है कि व्यक्ति इस संसार में रहकर सारे ऐश्वर्य प्राप्त करे, उपभोग करे, धन संचय करे, किन्तु सब धर्मानुकूल हो, उसके मूल में धर्म ही हो। इन मानवीय मूल्यों के माध्यम से एक मनुष्य अपने नैतिक, धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उत्तरदायित्वों को अपनी क्षमतानुसार निभाने में सफल होता है। धर्म मानवीय मूल्यों का मोरुदण्ड है यह कोई धार्मिक संगठन नहीं है भ्रमंडलीकरण के इस दौर में बदलती हुई परिस्थितियों के कारण भारतीय समाज के दर्शन और आदर्शों में भी परिवर्तन आया है। परम्पराएँ मानवीय जीवन मूल्यों को सरवाधिक प्रभावित करती हैं। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन मूल्य विषयक दृष्टिकोण होता है। गृहस्थाश्रम के संपूर्ण उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के पश्चात् वन की ओर प्रस्थान करने के साथ ही वानप्रस्थ आश्रम का प्रारंभ होता है।<sup>27</sup> ऋग्वेद में वानप्रस्थ आश्रम का उल्लेख नहीं मिलता है। ताण्डय महाब्राह्मण में वैखानस मुनियों का वर्णन किया गया है। गौतम ने वानप्रस्थ के लिए बेखानस शब्द का प्रयोग किया है। बौधायन के अनुसार वानप्रस्थ वह है जो वैखानस शास्त्र में वर्णित विधि निषेध का पालन करता है। बौधानयन के अनुसार वानप्रस्थ की दो श्रेणियाँ हैं-प्रथम पचमानक, जो पकवान्न खाते थे और द्वितीय अपचमानक जो अपरिपकवान्न खाते थे। इन दोनों श्रेणियों को पाँच-पाँच उपश्रेणियों में बांटा गया था। इससे स्पष्ट होता है कि वानप्रस्थ आश्रम सूत्रकाल में पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुका था। पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी इस आश्रम में प्रवेश करती थीं। मनु ने केवल क्षत्रिय एवं वैश्य को ही वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश की अनुमति प्रदान की है। शूद्रों के लिए इस आश्रम में प्रवेश वर्जित किया गया है। परंतु महाभारत के अनुसार गृहस्थ आश्रम में धर्म का सम्यक् रूप में पालन करने के पश्चात् राजाज्ञा से शूद्र भी वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश कर सकता था। विदुर के साथ राजाज्ञा का भी बंधन नहीं था।

वैश्यों में वानप्रस्थ आश्रम का प्रचलन बहुत कम था। संभवतयः भोग विलास का जीवन जीने वाले और व्यापार में व्यस्त रहने वाले वैश्य वानप्रस्थ आश्रम का कष्टमय जीवन सहन नहीं कर सकते थे। जो मनुष्य गृहस्थ के बाद वानप्रस्थ आश्रम को नहीं अपनाता था उसे पापकर्मी कहा जाता था। मनुस्मृति में कहा गया है ---अनधीत्य द्विजो वेदान अनुपद्य तथा सुतान्। अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यथ॥<sup>28</sup> वानप्रस्थ आश्रम में गये हुए मनुष्य का जीवन कठोर तपस्या त्याग, साधना से परिपूर्ण होता था। उसे ब्रह्मचर्य और इन्द्रियां निग्रह के साथ सत्य- अहिंसा का पालन करना पड़ता था। वानप्रस्थी सर्वदा वेदाध्ययन में लगे रहे थे। शैय्या पर सोना उनके लिए वर्जित था। गौतम के अनुसार पंचमहायज्ञ करना उनके लिए आवश्यक था। सदी और गर्मी, सुख-दुःख, मान-अपमान आदि को सहन करना, सभी जीवों के प्रति दया और मैत्री भाव रखना, दानशील होना, सांसारिकता से विरक्ति, भिक्षा पर जीविकोपार्जन करना आदि वानप्रस्थी का मुख्य धर्म था। अपने सभी सामाजिक कर्तव्यों के प्रति जागरूक रहते हुए, अन्त में मोक्ष की प्राप्ति ही वानप्रस्थाश्रम व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य था। मानव जीवन के बचे हुए शेष भाग को सन्यासाश्रम में रखा गया। जीवन के प्रमुख लक्ष्य 'मोक्ष' की प्राप्ति इसी आश्रम के माध्यम से सम्भव हो सकती थी। ऋग्वेद में सन्यासाश्रम का स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता अपितु यतियों और मुनियों का वर्णन किया गया है। छन्दोग्य उपनिषद् में प्रथम तीन आश्रमों का स्पष्ट वर्णन किया गया है। इस वर्णन के पश्चात् ही उपनिषद्कार का कथन है कि अमृत्व 'ब्रह्मस्थ को ही प्राप्त होता है। सन्यासाश्रम का सर्वप्रथम उल्लेख ब्रह्मदाण्यक उपनिषद् में मिलता है। इसमें एक स्थान पर याज्ञकल्बय अपनी पत्नी मैत्रेयी से कहते हैं कि मैं गृहस्थाश्रम को त्यागकर प्रवज्या अंगीकार करने जा रहा हूँ। सन्यासी मनुष्य सांसारिक मोह माया से विरक्त होकर ब्रह्मचारी, अहिंसावृत्ति, निर्द्वन्द्व, सत्यनिष्ठ, क्रोधहीन, और क्षमाशील होता है। गृहस्थाश्रम की उदारता और दानशीलता पर एक सन्यासी के जीवन का निर्वाह होता है। मनु के अनुसार सन्यासी को अल्पाहारी होना चाहिए और भिक्षा के लिए सिर्फ एक बार ही गांव में प्रवेश करना चाहिए। जीवन के सभी ऋणों से मुक्ति पाना तथा अध्यात्मिक ज्ञान अर्जित करते हुए, मोक्ष की प्राप्ति ही एक सन्यासी का प्रमुख लक्ष्य होता था। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि काम्य कर्मों का पूर्णतया परित्याग तथा कर्तव्य कर्मों के फल का सर्वविध परित्याग सन्यास है।<sup>29</sup> प्रत्येक देश अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से पहचाना जाता है। यह हमारा सौभाग्य है कि वर्तमान समय में भी भारतीय संस्कृति जीवित है। क्योंकि आज भी हमारे समाज में ये मानवीय मूल्य पुरुषार्थ चतुष्टय मान्य है। परन्तु दुर्भाग्यवश आज का मनुष्य अर्थ और काम के पीछे दीवाना सा दौड़ रहा है। गांधी जी अक्सर कहते थे कि धर्म द्वारा नियन्त्रण व्यक्ति के भीतर शुभ विचारों को बनाए रखने में सहायता करता है परन्तु आधुनिक भौतिकवादी समाज में गांधी जी के विचारों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा है। इसी कारण आज हमारा समाज अव्यवस्थित हो गया है। आज के दौर में अर्थ और काम पुरुषार्थ नहीं है वरन् निर्बन्ध प्रवृत्ति बन गए हैं क्योंकि भारतीय मनीषियों ने धर्म अथवा नैतिक आदर्शों की सीमा के अन्दर ही अर्थ और काम को पुरुषार्थ स्वीकार किया था। परन्तु वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति इन्हें किसी सीमा में नहीं बांधना चाहती। संचार क्रान्ति के इस दौर में विज्ञापनों ने सामान्य व्यक्ति के कृत्रिम अभाव बोध उत्पन्न कर दिया गया है। जिसकी पूर्ति ही मानव जीवन का लक्ष्य बन गया है। परिणाम स्वरूप स्त्री-पुरुष संबंधों की सभी मर्यादाएं टूट कर बिखर रही हैं। पारिवारिक बन्धन टूट रहे हैं, अकेलापन मानवीय नियति बनता जा रहा है। आज का व्यक्ति अर्थ को

अत्याधिक महत्व देता है फिर चाहे वह किसी भी मार्ग से आ रहा हो। इस प्रकार के अर्थ से मनुष्य का चरित्रिक पतन होता है जिससे भ्रष्टाचार पनपता है। जो आज भारतीय समाज में दीमक की तरह लग गया है जो अन्दर ही अन्दर भारतीय समाज को खोखला कर रहा है। यदि हमें नित्य बढ़ रहे अपराधों को, व्यभिचार को, और भ्रष्टाचार को रोकना है और समाज में प्रेम और सौहार्द का वातावरण पुनः तैयार करना है तो हमें अपनी परम्परागत अनुभव के आधार पर जाँची परखी पुरुषार्थ चतुष्टय व्यवस्था को पुनः स्थापित करना ही होगा। मानव जीवन में पुरुषार्थ चतुष्टय अत्यंत वैज्ञानिक ढंग से निर्मित किये गये थे व्यवस्थाकारों ने मनुष्य के संपूर्ण जीवन को मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिकता के आधार पर चार भागों में विभाजित किया था। वर्तमान सामाजिक परिप्रेक्ष्य में खण्डित हो रहे नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना हेतु पुरुषार्थ चतुष्टय व्यवस्था को अक्षरशः पुनः स्थापित करने की आवश्यकता है। आज का युवा अनुशासनहीन, दिशाहीन दुराचारी, और आत्मघाती हो रहा है। उसे ब्रह्मचर्य के धर्म से परिष्कृत करने की आवश्यकता है। इसलिए आज की दिशाहीन और लक्ष्यहीन शिक्षा में ब्रह्मचर्य आश्रम में धर्म के गुणों और सिद्धांतों को स्थापित कर इसे उद्देश्यपूर्ण बनाया जाना चाहिए। आज के भारतीय समाज के हालात तेजी से महाविनाश की ओर बढ़ रहे हैं। इस महाविनाश को रोकने के लिए गृहस्थ आश्रम में अर्थ और काम को नैतिक मूल्यों से परिष्कृत करना चाहिए और वानप्रस्थ आश्रम तथा संन्यास आश्रम के आध्यात्मिक गुणों और सिद्धांतों को समायोजित करके मोक्ष की प्राप्ति के ही उसका लक्ष्य बनाना होगा। वर्तमान परिवेश में, यदि पुरुषार्थ चतुष्टय व्यवस्था को ठीक से सुव्यवस्थित किया जाये, उन्हें संस्कारों से परिष्कृत किया जाये, तो आज की पथभ्रष्ट युवा पीढ़ी को उचित दिशा प्रदान करने तथा अशांत भारतीय समाज के पुनर्निर्माण में यह व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सन्दर्भ- ग्रंथ सूची

- 1- मार्कण्डेय पुराण 2. 41. 191
- 2- ऋग्वेद 10.109.5
- 3- ऋग्वेद मण्डल 8
- 4- आपस्तम्ब धर्मसूत्र 2.1.21.1
- 5- महाभारत 12.242.15
- 6- गौतम धर्मसूत्र 3.2
- 7- महाभारत 12.242.15
- 8- वसिष्ठ धर्मसूत्र 7.1.2
- 09- छन्दोग्य उपनिषद् 2.23.1 त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययन दानमिति.....
- 10- ब्रह्दारण्यकोपनिषद् 4.5.2
- 11- मुण्डकोपनिषद् 1.2.11
- 12- जाबालोपनिषद्, 4 ब्रह्मचर्य परिसमाप्य ग्रही भवेद् ग्रही भूत्वा बनी भवेद्द्वनी भूत्वा प्रव्रजेत्
- 13- श्वेताश्वतरोपनिषद् 6.21
- 14- संस्कार प्रकाश - गीता प्रैस गोरखपुर प्र. सं. 13
- 15- मनुस्मृति 2.41-244



- 16- अथर्ववेद 11.5.18
- 17- मनुस्मृति 5.148
- 18- अथर्ववेद 11.5.16
- 19- मनुस्मृति 2.177-179
- 20- मनुस्मृति 5.148
- 21- ऋग्वेद 1.164.41
- 22- मनुस्मृति 2.177-179
- 23- महाभारत उघोगपर्व 44.10
- 24- मनुस्मृति 3.77
- 25- आपस्तंब धर्मसूत्र 2.1.21.1
- 26- याज्ञवल्क्य स्मृति 1.102
- 27- महाभारत का शान्तिपर्व 4.60
- 28- मनुस्मृति 4.371
- 29- श्रीमद्भगवद्गीता 18.21

( अन्य स्रोत )

- डी.एन.झा –प्राचीन भारत का इतिहास,विविध आयाम,हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय 2015
- डा.किरण टण्डन –भारतीय संस्कृति ,ईस्टर्न बुक लिंक्स दिल्ली 2007
- श्रीमती उर्मिला रस्तोगी –मनुस्मृति,परिमल पब्लिकेशन नई दिल्ली 2005
- वी.डी. महाजन –प्राचीन भारत का इतिहास,एस. चन्द 2009
- श्री उमेशचन्द्र पाण्डेय –याज्ञवल्क्य स्मृति,चौखम्बा संस्कृत आफिस सिरीज वाराणसी 1967
- राम शरण शर्मा – भारत का प्राचीन इतिहास ,ओ.यू.पी.भारत 2018
- महाभारत –प्रथम खण्ड ,मोतीलाल बनारसीदास गोरखपुर 1969
- महाभारत –त्रतीय खण्ड ,मोतीलाल बनारसीदास गोरखपुर 1969
- महाभारत –पंचम खण्ड ,मोतीलाल बनारसीदास गोरखपुर 1969
- पी.वी.काणे –धर्मशास्त्र का इतिहास ,हिन्दी समिति लखनऊ 2000
- के.ए.नीलकांत शास्त्री –भारत के इतिहास और संस्कृति के पहलू ,ओरियंटल पब्लिशर्स 1974
- महात्मा गोपाल स्वामी –आश्रम व्यवस्था ( वैदिक मर्यादाओं के आलोक में) चौखम्बा पब्लिकेशन्स वाराणसी 2014